Knowledgeable Research –Vol.1, No.8, *March 2023*

Web: http://www.knowledgeableresearch.com/

जनजाति कोया, रम्पा या मान्यम क्षेत्र के विद्रोह

डॉ. रणजीत कुमार मीणा
सहायक आचार्य (समाज शास्त्र)
राजकीय महाविद्यालय, ऋषभदेव
ईमेल: ranjitmeena16@gmail.com

****

प्रस्तावना

दक्षिण भारतीय सिनेमा के सुपरस्टार्स राम चरण और जूनियर एनटीआर की फिल्म 'आरआरआर' कि ब्रिटिश हुकूमत से जंग की कहानी पर आधारित इस फिल्म में दोस्ती, धोखा, इमोशन, दमदार डायलॉग और धासूं एक्शन देखने को मिल सकता है। बताया जा रहा है कि यह फिल्म दो क्रांतिकारियों अल्लूरी सीताराम राजू और कोमाराम भीम के जीवन और विद्रोह की कहानी पर आधारित है। दरअसल ब्रिटिश शासन के दौरान अंग्रेजों का मुख्य फोकस यहां के संसाधनों का दोहन करने पर था। इसी क्रम में यहां के वन संसाधनों और जमीनों का दोहन करने के मकसद से 1882 का मद्रास वन अधिनियम लाया गया। इस कानून की मदद से स्थानीय वनवासियों को उनके ही संसाधनों के इस्तेमाल करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। आदिवासियों को जलावन लकड़ी के लिए पेड़ काटने से मना कर दिया गया। इस कानून की वजह से वहां के आदिवासी समुदाय 'पारंपरिक पोडु कृषि पद्धति' के तहत खेती नहीं कर पा रहे थे। बता दें कि 'पोडु कृषि पद्धति' एक तरह की 'झूम खेती' होती है। तो इस तरह यही वन कानून रंपा विद्रोह की वजह बन गई। शुरुआत में इस विद्रोह के नेता जिनमें अल्लूरी सीताराम राजू और कोमाराम भीम का नाम प्रमुख है – असहयोग और सविनय अवज्ञा के गाँधीवादी तरीकों का प्रयोग करते रहे। लेकिन जब बहरी अंग्रेजी सरकार को यह भाषा समझ में नहीं आई तो औपनिवेशिक शासन के खिलाफ इन क्रांतिकारियों ने हथियार उठा लिया। इस तरह 'रम्पा विद्रोह', जिसे 'मान्यम विद्रोह' भी कहा जाता है, ब्रिटिश भारत के अधीन 'मद्रास प्रेसीडेंसी' की गोदावरी शाखा में शुरू किया गया एक आदिवासी विद्रोह था। इसकी शुरुआत अगस्त 1922 से हुई और मई 1924 में 'राजू' को कैद करने और उनकी हत्या किए जाने तक जारी रहा।

शब्द कुंजी – आदिवासी विद्रोह, अल्लूरी सीताराम राजू और कोमाराम भीम, पोडु कृषि पद्धति।

****

विद्रोह के नेताओं की बात करें तो रामाराजू का जन्म 1897 में विशाखापत्तनम जिले के पांडरंगी में एक क्षत्रिय परिवार में हुआ था। उनके माता–पिता वेंकटरामा राजू और सूर्यनारायणम्मा, मूल रूप से पश्चिम गोदावरी जिले के मोगल्लू के रहने वाले थे। रामाराजू ने महज 27 साल की उम्र में सीमित संसाधनों के साथ सशस्त्र विद्रोह की अगुवाई की और गरीब, अनपढ़ आदिवासियों को शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ प्रेरित किया। इनकी वीरता के लिए इन्हें 'मान्यम वीरुडु' यानि 'जंगल के नायक' की उपाधि भी दी गयी है। वहीं कोमाराम भीम का जन्म साल 1901 में तेलंगाना के आदिलाबाद जिले में 'गोंड समुदाय' में हुआ था। वे 'चंदा' और 'बल्लालपुर' रियासतों के जंगलों में बसी आबादी के बीच पले–बढ़े थे। युवावस्था में 'कोमाराम भीम' जेल से भागकर असम के एक चाय बागान में काम करने चले गए। यहां, उन्हें 'अल्लूरी सीताराम राजू' की अगुवाई में चल रहे विद्रोह के बारे में पता चला। इससे प्रेरित होकर वे अपनी गोंड जनजाति की रक्षा के लिए विद्रोह में कूद पड़े। इतिहासकारों की मानें तो ब्रिटिश राज के दौरान, देश भर में करीब 70 प्रमुख आदिवासी विद्रोह हुए थे।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय समाज के बीच हुए संघर्ष के बारें में बहुत कुछ लिखा गया है लेकिन प्रादेशिक स्तर पर प्रमुख सामाजिक समूहों ने, जैसे किसान, कारीगर, आदिवासियों ने इसमें क्या भूमिका अदा की इस बारे में बहुत कम लिखा गया है। सुमित सरकार ठीक ही कहते हैं कि यह महत्वपूर्ण कमी राजनीतिक आन्दोलनों, विशेषतः राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास को एक शून्यता का शिकार बना देती है और इतिहास को अनिवार्यतः ऐसा अध्ययन बनाती है जिसकी दिशा ऊपर से नीचे की ओर होती हैं[ष] असल में भारत के विभिन्न भागों में रहने वाले आदिवासियों ने 19 वीं सदी में कई बार विद्रोह किया और इन्होंने अपने अद्‌भूत शौर्य का परिचय दिया।

भारतीय समाज का एक बड़ा हिस्सा जंगल और पहाड़ों में रहता रहा है और जिन्हें हम आदिवासी कहते हैं। आदिवासियों की जीवन पद्धति गैर आदिव समाज से भिन्न रही है। आदिवासी समुदाय की जरूरतें बहुत सीमित रही है और खेती तथा जंगल की उपजों से उनकी गुजर हो जाती थी। खेती करने का इनका तरीका भी बहुत आसान था ! कई जगहों पर वे हल का इस्तेमाल भी नहीं करते थे और आदिम तरीके से खेती करते थे, बुनियादी जरूरतों को पूरा करने वाली

उनकी उत्पादन, पद्धति उनकी सामुदायिक जीवन प्रणाली का पोषण करती थी। ब्रिटिश शासन की स्थापना होने पर ब्रिटिश शासन प्रणाली ने आदिवासी समुदाय को इनकी कृषि पद्धति को गहराई से प्रभावित किया। ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारत के विभिन्न भागों के आदिवासियों का जो आन्दोलन समय–समय पर हुआ इसे समझने के लिये इस बात को समझना जरूरी है कि औपनिवेशिक शासन प्रणाली समाज और इनकी कृषि व्यवस्था को किस रूप में प्रभावित किया।

19 वीं सदी में भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रसार होने पर दुर्गम जंगलों का प्रदेश भी इनकी हुकूमत के अन्तर्गत आ गया । शुरूआत में विदेशी मिशनरियों ने और मैदानी इलाकों से व्यापारियों ने आदिवासियों के इलाकों में प्रवेश किया। ब्रिटिश प्रशासन के अन्तर्गत उन्होंने सरकारी कानूनों, अदालत, पुलिसतंत्र वगैरह की मदद से आदिवासियों के प्रदेश पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया और इनकी अज्ञानता का फायदा उठाकर इनका शोषण शुरू कर दिया।

1864 में ब्रिटिश सरकार ने वन विभाग की स्थापना की और भारत की कुल जमीन का करीब 20 प्रतिशत हिस्सा वन विभाग की हुकूमत के अन्तर्गत आ गया। जंगल की भूमि और सम्पत्ति पर अब सरकारी अंकुश स्थापित हो गया । 1878 में भारतीय वन अधिनियम पास किया गया और पहले मिलने वाली छूट के बदले औपनिवेशिक हितों के अनुरूप नये कायदे–कानून जारी किये गये। अब आदिवासियों के जंगल के अधिकार बहुत सीमित हो गये । व्यापारिक हितों के लिये अब जंगल की सम्पत्ति उनके हाथ से छीन ली गयी और बाहर से आये मुनाफाखोर व्यापारियों, ठेकेदारों और जमींदारों के हाथ में चली गयी।

स्थानीय स्तर पर सामुदायिक जीवन, मूल्यों और रीतिरिवाजों का स्थान व्यक्तिवादी और पूंजीवादी व्यवस्था के पोषक नियमों ने ले लिया । आदिवासियों के दिवाली पारम्परिक नियम कायदों और रीति रिवाजों के स्थान पर अब अंग्रेज सरकार द्वारा बनाये गये कानून लागू हो गये । यह नयी व्यवस्था उनके लिये बनावटी थी और इनकी समझ तथा पहुंच के बाहर थी नये कानून, अदालती कार्यवाही, वकीलों की फीस, सब उनके लिये अनजाने थे।

नये औपनिवेशिक प्रशासन में ये अपने ही अधिकार क्षेत्र में गुलामी की स्थिति में आ गये। जंगल घटते गये और नयी साफ की गयी जमीन पर गैर आदिवासियों ने कब्जा जमा लिया और परम्परा से यहां खेती कर रहे आदिवासी अब उनकी जमीन पर गणोतिया, भागिया यानी खेतमजदूर की स्थिति में आ गये नयी प्रशासनिक व्यवस्था ने आदिवासी समाज पर उनके सरदार तथा सामाजिक संस्थाओं का प्रभाव घटा दिया। परिणाम यह हुआ कि ये स्थानीय सरदार असंतुष्ट हो गये। शुरूआत में उनका रोष औपनिवेशिक राज्य के सहयोगी ठेकेदारों, जमींदारों तथा व्यापारियों के विरूद्ध था लेकिन समय बीतने पर उन्होंने इन्हें प्रश्रय देने वाली औपनिवेशिक व्यवस्था का विरोध करना शुरू किया।

भारत में आदिवासी समाज ने जो विद्रोह किये उनके कुछ कारण एक जैसे थे। बिपिनचन्द्र ने इस स्थिति को इस प्रकार रखा है– आदिवासी इलाकों में बाहरी लोगों और औपनिवेशिक राज की घुसपैठ ने उनकी पूरी सामाजिक व्यवस्था को उलट–पलट दिया उनकी जमीन उनके हाथ से निकलती गयी और वे धीरे–धीरे किसान से खेत मजदूर होते चले गये।

जंगलों से उनके गहरे रिश्ते को भी औपनिवेशिक हमले ने तोड़ दिया ।... जंगली भूमि, वन – उत्पादों व गांवों की जमीन के इस्तेमाल पर भी तरह–तरह के अंकुश लगा दिये गये। झूम खेती याने जगह बदलकर की जाने वाली खेती पर तो पूरी तरह रोक लगा दी गयी। पुलिस और अन्य छोटे–मोटे अधिकारियों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों, शोषण और जबरन उगाही ने आदिवासियों का जीना दूभर कर दिया । लगान वसूलने वाले लोग और महाजनों–जैसे सरकारी बिचौलिये और दलाल इन आदिवासियों का शोषण तो करते ही थे, उनसे जबरन बेगार भी कराते थे।

रम्पा आदिवासी समुदाय :

बीसवीं सदी की शुरूआत में गुडेम और रम्पा के इलाके मद्रास प्रान्त के अधीन थे। यहां रेड्डी, कोया, कोण्डा, दोरा, कमार आदिवासी रहती थी। ये अलग–अलग प्रजाति के थे और उनके रीति रिवाजों और आर्थिक सामाजिक स्थिति में भी फर्क था । जैसे, रेड्डी जाति के किसान विकसित थे और इस इलाके के ज्यादातर मुट्टादार इसी जाति के थे। कोया और कोंडा दोरा गोंड आदिवासी ज्यादातर खेतीबाड़ी से जुड़े हुए थे । तथापि सभी आदिवासियों में कुछ समानताएँ थीं।

एक तो उन सभी की अर्थव्यवस्था झूम खेती पोडु पर आधारित थी । मुट्टादारों और कारीगरों को छोड़कर सभी आदिवासी खेती से जुड़े थे । झूम खेती का अर्थ है एक स्थान पर खेती करने के बाद अगले साल दूसरे स्थान पर खेती करना। खेती की इस प्रणाली में हल बखर और बैलों का इस्तेमाल नहीं होता था, बल्कि जमीन के पेड़ पौधों को जलाकर उसकी राख पर लकड़ी से रेखाएं खींचकर बुवाई की जाती थी। यह खेती की आदिम प्रणाली थी । झूम खेती के अलावा वनोपजों को एकत्र करना, लकड़ी काटकर बेचना तथा मवेशी पालना भी यहां के आदिवासियों की आजीविका के साधन थे। बाहर से आने वाले बंजारे आदिवासि से स्थानीय पैदावार खरीदकर उसके बदले आदिवासियों को उनके काम की चीज देते थे, जैसे नमक, अनाज, धातु की चीजें आदि।

दूसरे, उनकी धार्मिक मान्यताएं समान थीं । इस बदली हुई परिस्थिति में आदिवासियों के धर्म और उपासना पद्धति पर भी असर हुआ। इनकी अपनी मूल धार्मिक आस्थाएं तो थीं लेकिन मैदान से आकर बसने वाले हिन्दूओं की धार्मिक परंपराओं का प्रभाव उन पर पड़ा । अब हिन्दूओं के देवी–देवता भी उनके देवस्थान में स्थान पाने लगे। आदिवासियों के कोंडा देवता के साथ हिन्दू धर्म के हनुमान, राम आदि की भी पूजा होने लगी ।

तीसरे, उन सभी में मुट्टादारी व्यवस्था प्रचलित थी। मुट्टादार आदिवासियों के स्वाभाविक नेता थे। मध्ययुग में मुगल शासकों, दक्खन की सल्तनतों ने और उनके मन्सबदारों के साथ उनका सीधा सम्बन्ध था । उस इलाके में शांति व्यवस्था की जवाबदारी उनके सिर पर थी। उनका स्थान वंशानुगत था । यह जरूर है कि उनकी जमींदारी स्थायी स्वरूप की नहीं थी और वे अपनी मिल्किंयत की खरीद बिक्री नहीं कर सकते थे। अठारहवीं सदी के अन्त में स्थानीय जागीरदारों और मन्सबदारों द्वारा ब्रिटिश आधिपत्य स्वीकार किये जाने के बाद मुट्टादार लोग अब ब्रिटिश शासन के नीचे आ गये । ये लोग कानून और व्यवस्था की कई जिम्मेदारी निभाते थे। वे सरकार को निश्चित लगान जमा करते थे। हर गांव में मुखियों के जरिये ये लगान एकत्र करके उसका बड़ा हिस्सा उपज के रूप में सरकार को देते थे। इलाके की दुर्गमता और यातायात की कठिनाईयों के कारण ये मुट्टादार आन्तरिक स्वायत्ता का उपभोग कर रहे थे। हालांकि मुट्टादारों तथा सरकारी तंत्र के बीच सम्बन्ध नियमित और स्थिर नहीं थे। फिर भी वे प्रजा और प्रशासन के बीच महत्वपूर्ण कड़ी होने के कारण स्थानीय तौर पर उनका व्यापक प्रभाव था।

ब्रिटिश सरकार के प्रशासकीय करों में हुए बदलाव का सीधा असर स्थानीय जमींदारों तथा मुट्टादारों पर पड़ा। परिणाम यह हुआ कि उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में इस इलाके के जमींदारों तथा मुट्टादारों और ब्रिटिश प्रशासन के बीच तनाव बढ़ा । स्थिति इतनी बिगड़ गयी कि सन् 1840 में जमींदारों और मुट्टादारों ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह कर दिया। लेकिन यह आन्दोलन जमींदारों तथा मुट्टादारों तक सीमित रहा और सामान्य आदिवासी किसान उसमें शामिल नहीं हुए। कुछ दशकों

तक शांति रही लेकिन उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कई नये तत्व सक्रिय होने के कारण आदिवासियों के जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा और विद्रोह की भूमिका तैयार हो गयी ।

आदिवासी विद्रोह की पृष्ठभूमि :

19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटिश शासन ने नयी रेलवे लाइनें और सड़के बनवायीं । मद्रास से कलकत्ता की रेल्वे लाइन इस इलाके में बनी और कई सड़के भी बनीं। अब इस इलाके की प्राकृतिक सम्पदा तथा स्वायत्त अर्थ व्यवस्था राष्ट्रीय और वैश्विक बाजार के लिये खुल गयी। खेलेश्वरम, गोकवरम, कृष्णादेवी पेट जैसे मैदानी इलाके में शहरों तथा चोडवरम कोटा लमसींगी, खडुतीगल जैसे पर्वतीय प्रदेशों में जंगल की पैदावार के व्यापार केन्द्र विकसित हुए। मैदानी इलाके के व्यापारी और पिछड़ी जातियों के लोग रोजगार और व्यवसाय के लिये इस नयी व्यापारिक हलचल में इस पर्वतीय प्रदेश में आकर बसने लगे। व्यापार के साथ स्थानीय मुट्टादारों और किसानों के साथ उनके आपसी सम्बन्ध भी विकसित हुए। वे स्थानीय आदिवासियों के पास से सस्ती कीमत पर जंगल की पैदावार बेचने के लिये करार कर लेते थे । इसके अलावा वे आदिवासियों को ऊंची ब्याज दर पर कर्ज भी देने लगे और कर्ज न चुकाये जाने की स्थिति में वे उनके मवेशियों तथा जमीन ले लेते थे। ब्रिटिश कानून भी इन व्यापारियों की तरफदारी करते थे।

इन व्यापारी जातियों ने स्थानीय आदिवासी जमींदारों से ष्मुट्टादारी" अधिकार प्राप्त कर लिये । रम्पा के जमींदारों के बहुत से मुट्टादारी अधिकार कोमटी जाति के साहूकारों ने ले लिये। लगान और अन्य करों को बढ़ाकर इन लोगों ने स्थानीय आदिवासी किसानों का शोषण शुरू किया।

ब्रिटिश करों तथा आर्थिक सुधारों के कारण आदिवासियों के भू अधिकारों पर विपरीत असर पड़ा। अभी तक परम्परा के अनुसार जमीन बेचने की वस्तु नहीं थी । आबादी की तुलना में जमीन बहुत थी और झूम खेती के प्रचलन के कारण एक ही स्थान पर खेती न होने से भू स्वामित्व जैसी कोई बात नहीं थी। लेकिन जैसे–जैसे व्यापारिक कारणों से सरकारी ठेकेदारों का प्रभाव बढ़ा, वैसे–वैसे झूम खेती के लिये जमीन घट गयी। बगीचे और उपजाऊ जमीन साहूकारों के कब्जे में चली गयी। उन्होंने स्थानीय आदिवासियों को गणोतिया अथवा भागिया प्रणाली से जमीन सौंपकर उन्हें खेतिहर मजदूर बनाकर उनका शोषण किया या फिर इन्हें खेती से पूरी तरह बेदखल करके जमीन को मैदानी इलाकों से आये किसानों को बेच दी। ब्रिटिश कानूनों से अपरिचित आदिवासी इन तत्वों के गुलाम बन गये। इस शोषक वर्ग ने आदिवासियों को उनकी ही जमीन पर विदेशी बना दिया। उन पर ईंधन कर, चरागाह कर जैसे नये कर लगा दिये गये और पुराना लगान कई गुना बढ़ा दिया गया । पेड़ काटने के लिये ठेका देने की नीति के कारण पेड़ों पर स्थानीय मट्टादारों का परम्परागत अधिकार खत्म हो गया। 1878 के विद्रोह के लिये यह एक अति महत्व का कारण था ।

आदिवासियों के विद्रोह का एक और कारण अफीम व्यापार से जुड़ा था। उन्नीसवीं सदी के दूसरे दशक में मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश से गोदावरी नदी की घाटी के डुगराल इलाके में काफी तादाद में अफीम बेचने के लिये आती थी । आमदनी के लोभ से ब्रिटिश सरकार ने उसकी बिक्री के लिये ठेके देने तथा परवाने बेचने शुरू किये। गुडेम प्रदेश में 9 और रम्प प्रदेश में 14 ऐसे परवाने वाली दुकानें शुरू हो गयी। मट्टादार भी इसमें शामिल हो गये। हताश होकर सामान्य आदिवासी अफीम के व्यसन के शिकार हो गये और आर्थिक तथा नैतिक दृष्टि से उनका पतन हो गया। जब इन शोषक व्यापारी वर्ग और साहूकारों के खिलाफ रोष जन्मा तब आन्दोलन का जन्म हुआ ।

लगान और भूमि की नयी व्यवस्था के कारण समाज के स्पष्टतः दो वर्ग हो गये। एक तरफ थे राज्य, जमींदार और साहूकार तथा दूसरी तरफ थे सामान्य आदिवासी किसान। यानी शोषक और शोषित के स्पष्ट वर्ग बन गये । मुट्टादारों की स्थिति इन दोनों वर्गों के बीच बंटी हुई थी। वे कभी शोषितों के साथ होते और कभी शोषकों के साथ। लेकिन सामाजिक रीति से आदिवासियों के साथ जुड़े होने के कारण और नयी आर्थिक व्यवस्था में बहुत पिसने के कारण उन्होंने किसानों का पक्ष लिया। इस कारण जब आदिवासी ने आन्दोलन शुरू किया तब इस वर्ग ने उनका नेतृत्व संभाला।

आदिवासी विद्रोह की प्रमुख घटनाएं :

19 वीं सदी के अन्तिम चतुर्थांश के दौरान गुडेम रम्पा प्रदेश के आदिवासियों ने शोषण विरोधी आन्दोलन शुरू किया। 1879–80 के साल में रम्पा प्रदेश में इतना व्यापक विद्रोह हुआ कि थोड़े समय में ही चार हजार वर्गमील के इलाके में इसका विस्तार हो गया। जानी काकारी नाम के एक आदिवासी ने यह विद्रोह शुरू किया। नयी लगान नीति ओर साहूकारी व्यवस्था के कारण उसने अपनी बहुत सी जमीन खो दी थी। पड़ौसी गांव में रहने वाले एक बड़े किसान वैंकैया ने उसकी बाकी जमीन भी लेने की चाल चलना शुरू की तो उसने पहले अदालत की शरण ली। लेकिन उसे सरकार से कोई न्याय मिलने की उम्मीद नहीं थी। तब उसने अपने साथियों और अन्य आदिवासियों के साथ वैंकैया के घर पर हमला कर दिया। इस प्रकार आदिवासी विद्रोह शुरू हो गया।

इस विद्रोह में कितने ही असंतुष्ट मुट्टादार शामिल हो गये। गुडेम पुलिस स्टेशन तथा चिंतपल्ली में सरकारी थानों पर हमले हुए और सरकार विद्रोहियों का कुछ नहीं कर सकी। इससे विद्रोहियों में आत्म विश्वास बढ़ा और आन्दोलन अन्य इलाकों में फैल गया। मैदानी इलाकों में कासिमकोट नाम के स्थान पर राजन्ना अनंथैया नामक एक तेलुगू नेता ने आदिवासियों को संगठित करके गुडेम प्रदेश में आदिवासियों का आन्दोलन शुरू किया। राजन्ना अनंथैया पहले शिक्षक तथा पुलिस कान्स्टेबल रह चुका था और आदिवासियों की सेना बनाकर उसने ब्रिटिश को भगाने की तैयारी की।

सूरल रामन्न नामक एक दूसरे युवा ने उसने अडुतीगल पुलिस स्टेशन पर हमला किया तथा लामसींगी के मुट्टादार और जयपुर (विशाखापट्टम के पास) के जमीदारों से सहायता मांगी। उसने

महाराजा से एक विचित्र "आद्य राष्ट्रवादी अभ्यर्थना की थी। क्या अंग्रेजों का हमारे देश में रहना अच्छा है ? हमें अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध छेड़ देना चाहिये रूसी भी अंग्रेजों को परेशान कर रहे हैं। यदि मुझे सैनिकों और शस्त्रों की सहायता मिले तो मैं राम की भूमिका निभाने को तैयार हूँ उसका आन्दोलन 1886 तक जारी रहा।

कोया आदिवासी विद्रोह

उसी प्रकार टोम्मा सोरा नाम के नेता ने कोया आदिवासियों के विद्रोह क नेतृत्व किया। उसने 16 मार्च 1879 को पुलिस पर हमला करके दो कान्स्टेबलों क हत्या कर दी। इसके बदले पुलिस ने दूसरे दिन उसके गांव पर हमला करके गांव में आग लगा दी। इस घटना से कोया आदिवासियों में भारी रोष पैदा हुआ और करीब एक सौ लोग तम्मन दोरा के साथ हो गये। पुलिस का दबाव बढ़ने पर रेकापल्ले इलाके में चले गये जहां कोया आदिवासियों की काफी आबादी रहती थी यहां के कोया लोगों में सरकारी नीति तथा मुनाफाखोर ठेकेदारों के प्रति उन व्यापक असंतोष था। उन्होंने तम्मन दोरा को अपना मुक्तिदाता जैसा समझा औ सैंकड़ों की संख्या में आदिवासी उसके साथ हो लिये। उनकी मदद से तम्मन दो ने उत्तर रम्पा प्रदेश में पुलिस स्टेशनों पर हमला शुरू किया। इस इलाके क मलकानगिरि कहा जाता था। वहां बड़ी तादाद में आदिवासी रहते थे। उन्हों तम्मन दोरा को मलकानगिरि का राजा जैसा मान लिया और उसके नेतृत्व ब्रिटिश सरकार से संघर्ष शुरू किया। जंगली तथा पहाड़ी इलाके के कार आदिवासियों ने पुलिस को सब तरह से परेशान किया। पहले उन्होंने पुलि स्टेशनों पर हमले किये। लेकिन दुर्भाग्य से कुछ बाद ही एक मुठभेड़ में तम्मन दो पुलिस के हाथों मारा गया। उसके मरते ही आदिवासियों का यह आन्दोल नेतृत्वहीन हो गया । यह जरूर है कि मरने के बाद भी तम्मन दोरा को आदिवासियों के लिये प्रेरणास्रोत बना रहा। उसके नाम का उपयोग आदिवासि को संगठित करने के लिये, परस्पर सहयोग की शपथ लेने के लिये तथा लड़ने लिये उत्साह पैदा करने के लिये बारंबार उपयोग किया जाता रहा ।

रम्पा प्रदेश में तम्मन दोरा के आंदोलन से प्रेरित होकर गुडेम प्रदेश में अन्याय के खिलाफ आदिवासियों ने लड़ाई शुरू की। द्वाराबंधम चन्द्रैया ने यहां आदिवासियों का नेतृत्व संभाला। मट्टादारों ने भी उसका पक्ष लिया चन्द्रया अपने साथियों के साथ खड्डुतीगल पुलिस स्टेशन पर हमला किया। उसने रेकपल्ले प्रदेश में भी आतंक मचाया। कुछ समय के बाद वह पुलिस के हाथों मारा गया ।

इसी समय मादुगुल प्रदेश में येल्लगारू जग्गया नामक एक सामान्य शिकारी ने विद्रोह का नेतृत्व अपने हाथ में लिया और पाडेरु पुलिस स्टेशन पर अपने साथियों के साथ हमला किया। नवम्बर 1880 में वह भी पुलिस की गोली का शिकार हो गया। रेकपल्ले प्रदेश में भीमा रेड्डी नाम के जमींदार ने करीब एक हजार आदिवासियों को संगठित करके सरकारी तंत्र के खिलाफ विद्रोह करके पुलिस थानों

पर हमला किया। मार्च 1879 में प्रथम विद्रोह शुरू होने के बाद करीब 22 महीना तक रम्पा गुडेम प्रदेश में आदिवासी किसानों का आन्दोलन जारी रहा। 1880 के दिसम्बर में उसका अन्त हुआ।

आदिवासी का विद्रोह (1922–24) :

42 साल के अन्तराल के बाद 1922 में रम्पा गुडेम इलाके के आदिवासी किसानों ने फिर से विद्रोह का झण्डा उठाया। इस समय रामा राजू नाम के विद्रोही नेता ने उन्हें संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि करीब–करीब पिछले आन्दोलन जैसी ही थी परन्तु उसका स्वरूप भिन्न था। अल्लूरी सीताराम राजू का जन्म 1898 में इलाके की तेलुगू भाषी जाति में हुआ था।

उसका परिवार सरकारी नौकरी से जुड़ा हुआ था। 1915–16 में वह विशाखापट्टनम क्षेत्र धुलिया, पैको, पुतिया और विजयनगर जिलो में आदिवासियों के सम्पर्क में आया। उसने गुडेम के –पर्वतीय प्रदेशों और जंगलों में सन्यासी के रूप में व्यापक भ्रमण किया था । स्थानीय आदिवासियों में उसका सम्मान में किया जाता था। और इनके उसका स्थानीय प्रजा के साथ गहरा संपर्क के रूप में उसकी प्रतिष्ठा के कारण उसे विद्रोह में व्यापक सहयोग मिला। यह जरूर है कि उसकी लड़ाई स्थानीय और व्यक्तिगत स्वरूप की नहीं थी । उस समय के राष्ट्रीय प्रवाह के अन्तर्गत उसने विदेशी शासकों के खिलाफ संगठित संघर्ष चलाया ।

1921 में उसने नासिक का भ्रमण किया । वहां वह गांधीवादी असहयोग आंदोलन के सम्पर्क में आया। इससे वह रचनात्मक कामों, खादी आदि से परिचित हुआ। गांधीजी के व्यक्तित्व तथा विचारों से प्रभावित होकर उसने खादी पहनना शुरू किया। तथा अहिंसा का मार्ग अपनाया और आदिवासियों को अपने हितों की रक्षा के लिये विदेशी शासकों के खिलाफ संघर्ष करने के लिये प्रोत्साहित करता था। उसने मट्टादारों की मदद से आदिवासियों को संघर्ष के लिये तैयार किया । रामा राजू के ज्यादातर समर्थक मट्टादार वर्ग के थे। जंगल, गोचर, लगान, गणोत वगैरे से सम्बन्धित अधिकारों के बाबत उनका सरकारी तंत्र से बाद भारी विवाद चल रहा था। परिणामस्वरूप वे असंतुष्ट थे। रामा राजू ने उन्हें संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसने इन मट्टादारों के सहयोग से चिंतपल्ले, कृष्णाद्रीपेट, राजवोमंगी के पुलिस थानों पर हमला किया। अगस्त 1922 में रामा राजू और उसके अनुयायियों का आन्दोलन व्यापक हो गया। पुलिस थाने पर हमला करके उसने भारतीय तथा यूरोपीय कर्मचारियों को मार डाला। वहां रहने वाले गोला बारूद तथा शस्त्रों पर उसने कब्जा जमा लिया। इन शस्त्रों की मदद से पेडुवलसा, गुंडेम, दाराकोंडा तथा मडुगुल वगैरे प्रदेश में उसने सशस्त्र विद्रोह किया। 1924 में मई माह में पुलिस के साथ हुई मुठभेड़ में रामा राजू की मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसके आन्दोलन का अन्त हो गया ।

निष्कर्ष

अल्लूरी सीताराम राजू अपने का प्रतिनिधि था लेकिन उसने आदिवासियों की समस्या में रुचि लेकर उन्हें संगठित किया। गांधीजी से प्रभावित होने के कारण उसने आदिवासियों की लड़ाई के स्थानीय हितों को राष्ट्रीय हितों के साथ जोड़ने का प्रयास किया था। इसके बाद उसने हिंसा और वर्ग संघर्ष के मार्ग पर विश्वास करने के कारण गांधीवादी और कांग्रेस ने उसकी लड़ाई को समर्थन नहीं दिया। इस इलाके में कांग्रेसी कार्यकर्ता ज्यादातर व्यापारी, साहूकार ठेकेदार, वकील तथा पर्वतीय प्रदेश में जमीनों पर कब्जा करके खेती करने वाले किसान वर्ग में से थे। उनके आर्थिक हित रामा राजू के द्वारा प्रेरित आदिवासी किसानों के आन्दोलन से मेल नहीं खाते थे । इस कारण उन्होंने एक निश्चित सीमा तक ही उसका समर्थन किया।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आन्ध्र का गुडेम–रम्प प्रदेश के आदिवासी आन्दोलन का जन्म व्यक्तिवादी, भौतिकवादी मूल्यों पर आधारित साम्राज्यवादी व्यवस्था के परंपरागत आदिवासी जीवनशैली पर पड़ने वोल असर से हुआ था। औपनिवेशिक राज्य का समर्थन से अभिजात्य समाज के प्रतिनिधि जैसे साहूकार, जमींदार, ठेकेदार तथा सरकारी कर्मचारियों द्वारा अपने वाले शोषण के खिलाफ आदिवासियों ने उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में संघर्ष शुरू किया था। शुरूआत में उनका आन्दोलन मट्टादारों के परंपरागत अधिकारों की सुरक्षा के विचार से प्रेरित था और ज्यादातर आदिवासियों के नेताओं तक सीमित थे। लेकिन समय बीतने पर बिचौलियों द्वारा सामान्य आदिवासियों का शोषण व्यापक होने के कारण मट्टादार भी शोषकों तथा शासन विरोधी लडाई से जुड़ गये। दैवी तथा अवतारवादी विचारों ने भी उन्हें संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। यह बात जरूर है कि बाद में इसका रूप हिंसक हो गया। सामुदायिक भावना तथा जाति और धर्म के तत्वों ने इन्हें संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। आदिवासी परम्परा मूल्यों ने इस लडाई को प्रभावित किया था।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. *सुमित सरकार, आधुनिक भारत, 1992,*
2. *बिपिनचन्द्र–भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, 1990,*
3. *डेविड अर्नोल्ड : रिबेलियस : द गुडेम रम्पा विद्रोह : 1839–24, रणजीत गुहा (संपादक), सबाल्टर्न स्टडीज, आक्सफोर्ड, 1982,*
4. *डेविड अर्नाल्ड, डकैती एण्ड रूरल क्राइम इन मद्रास, 1860–1940, जर्नल ऑफ पीजेन्ट स्टडीज जनवरी 1979*
5. *डेविड अनोल्ड : रिबेलियस हिलमैन : द गुडेम रम्पा विद्रोह : 1839–24 रणजीत गुहा (संपादक) , सबाल्टर्न स्टडीज, एक आक्सफोर्ड, 1982,*